ISSN 2277 - 7865
Price : 50.00

तित्थयर

वर्ष : ३७ अंक : ०२ मई २०१३

॥ जैन भवन ॥

शुभ कामनाओं सहित —

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं,
जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है।
जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास
कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

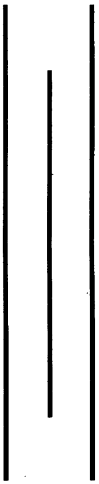

Nivesh Invest Pte. Ltd.
Mumbai-Singapore-Honkong-Shanghai

ISSN 2277 - 7865

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३७ अंक - २ मई २०१३

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@rediffmail.com

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from
P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655
and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street
Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा
पी-एच.डी., डी.लिट्

Editorial Board :

1. Dr. Satyaranjan Banerjee
2. Dr. Sagarmal Jain
3. Dr. Lata Bothra
4. Dr. Jitendra B. Shah
5. Prof. Anupam Jash
6. Dr. Abhijit Bhattacharyya
7. Dr. Peter Flugel
8. Dr. Rajiv Dugar
9. Smt. Jasmine Dudhoria
10. Smt. Pushpa Boyd

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	जैन दर्शन में जीवन प्रबन्धन के तत्त्व	प्रो. सागरमल जैन	१०५
२.	जैनाचार्य वट्टकेर-कृत मूलाचार मनन और मीमांसा	डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य	११४
३.	कुवलय माला	श्री केवल मुनि	१२४

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : मंगोलिया से प्राप्त देवी सरस्वती का चित्र

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

जैन दर्शन में जीवन प्रबन्धन के तत्त्व

प्रो. सागरमल जैन

जीवन प्रबन्धन दो शब्दों का एक सांयोगिक शब्द है। **प्रबन्धन** शब्द का सामान्य अर्थ सही ढंग से व्यवस्था करना है। प्राचीन जैन दर्शन में प्रबन्धन के लिए तंत्र शब्द का भी प्रयोग होता है। वस्तुतः जीवन-तंत्र को सम्यक् रूप से समझे बिना, जीवन का सम्यक् प्रबन्धन सम्भव नहीं है। मानव जीवन एक आध्यात्मिक एवं मनोदैहिक संरचना है। हमारे जीवन के तीन पक्ष है— आत्मा, मन और शरीर। प्रबन्धन शब्द-तंत्र की अपेक्षा भी एक व्यापक अर्थ रखता है, उसमें यथार्थ और आदर्श दोनों ही निहित हैं। जीवन व्यवस्था कैसी है, और उसे कैसा होना चाहिए— ये दोनों ही बातें प्रबन्धन शब्द में निहित हैं। वह यथार्थ और आदर्श का एक सम्मिश्रण है। जीवन क्या है और जीवन को कैसे जीना चाहिए–ये दोनों ही बातें जीवन प्रबन्धन में हैं। जब इसे हम जैन आचार्यों की दृष्टि से देखते हैं तो वह जैन जीवन–प्रबन्धन की विधि बन जाती है। जीवन का प्रबन्धन वस्तुतः बहुकोणीय होता है, क्योंकि जीवन स्वयं बहुआयामी है। जीवन को जीने के जो विविध आयाम हैं, उनके आधार जीवन–प्रबन्धन को हम विविध भागों में विभाजित कर सकते हैं।

वस्तुतः बाल्यकाल से ही जीवन प्रबन्धन का प्रयास प्रारम्भ हो जाता है। बालक जब युवावस्था की ओर बढ़ने लगता है, तो उसे शिक्षित करने का प्रयास किया जाता है। बालक की शिक्षा कैसी हो और उसे किस प्रकार दी जाए यह जीवन प्रबन्धन का प्राथमिक तत्त्व है। जैन दर्शन की मान्यता हैं कि हमें जो जीवन मिला है, वह मात्र

जीवन-जीने के लिए नहीं मिला है अपितु किसी लक्ष्य या आदर्श की पूर्ति के लिए मिला है। जीवन तो पेड़ पौधे और अन्य प्राणी भी जीते हैं, लेकिन उनका जीवन लक्ष्य विहीन होता है। जीवन में लक्ष्य का निर्धारण कर उसे पाने का प्रयत्न ही सम्यक् जीवन शैली का परिचायक हो सकता है। जीवन क्या है, कैसे उसे जिया जाना है, यह बताना ही शिक्षा का मुख्य प्रयोजन है। अतः शिक्षा विधि ऐसी होनी चाहिए, जो जीवन के यथार्थ और आदर्श का समन्वय करते हुए व्यक्ति को उसके जीवन लक्ष्य की प्राप्ति आगे बढ़ने में सहायक हो सके।

जीवन का एक लक्ष्य दुःखों से मुक्ति है, किन्तु दुःख विविध प्रकार के है, वे दैहिक भी हैं और मानसिक भी हैं। दैहिक दुःखों का निराकरण सम्यक् ढंग से जीवन जीने के द्वारा सम्भव हो सकता है, किन्तु मानसिक दुःखों से मुक्ति के लिए एक सम्यक् शिक्षण पद्धति आवश्यक होती है। शिक्षा का लक्ष्य मात्र जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति करना नहीं होता है। जैन दर्शन की मान्यता है कि आहार, निद्रा, भय और मैथुन की प्रवृत्ति सामान्य रूप से सभी प्राणियों में पाई जाती है, किन्तु मनुष्य मात्र वासनाओं का पिण्ड नहीं है, उसमें विवेक का तत्त्व भी है। अतः वह यह विचार कर सकता है कि उसे क्या खाना है, कब खाना है और कैसे खाना है, जो उसके शरीर, स्वास्थ्य और मनोभाव को सम्यक् बनाए रख सकें। यह सत्य है कि जीवन में आहार आवश्यक है, किन्तु आहार कैसा हो, कब खाया जाए और कितनी मात्रा में खाया जाए, यह सब निर्णय तो मनुष्य को करना होता हैं। इसी प्रकार जीवन की अन्य आवश्यकताएँ जैसे निद्रा, भय की स्थिति में सुरक्षा के प्रयत्न, कामवासना की संतुष्टि आदि भी जीवन-जीने की विधा से अनिवार्य रूप से जुड़े हैं, फिर भी उनकी एक विवेकशील पद्धति हो सकती है। उसे ही हम जीवन-प्रबन्धन के नाम से जानते हैं। प्रबन्धन मात्र एक व्यवस्था नहीं है, अपितु वह एक आदर्शोन्मुख जीवन

शैली है। इन आदर्शों का बोध शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है। अतः सम्यक् जीवन-प्रबन्धन के लिए सम्यक् शिक्षा व्यवस्था का होना आवश्यक है। शिक्षा मात्र यथार्थ की जानकारी नहीं है, अपितु वह यह भी बताती है कि जीवन का आदर्श क्या है, और उसे कैसे जिया जाता है।

प्राणीय जीवन का प्रारम्भ भी काल विशेष में होता है, और उसका अन्त भी किसी काल विशेष में होता है। जिन्हें हम जन्म और मृत्यु के नाम से जानते हैं। प्रबन्धन की दृष्टि से न तो जन्म हमारे हाथ में है और न मृत्यु ही हमारे हाथ में है। किसी उर्दू शायर ने ठीक ही कहा है–

लाइ हयात आ गये, कजा ले चली चले-चले।
न अपनी खुशी आए, न अपनी खुशी गए।।

जन्म और मृत्यु हमारे हाथ में नहीं है, वे कब और किस निमित्त से कहाँ हो और कैसे हो, इसकी कोई व्यवस्था भी सम्भव नहीं है। फिर भी जन्म और मृत्यु के दो छोरों के बीच जीवनधारा सम्यक् रूप से बहती रहती है। यह जीवन धारा का बहना ही मनुष्य के अधिकार क्षेत्र में है कि वह जीवन को कैसे जीता है। इस जीवनधारा का सम्यक् नियोजन ही जीवन प्रबन्धन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। जो समय प्रबन्धन के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है।

यह सही है कि न तो भूतकाल हमारे अधिकार क्षेत्र में होता है और न भविष्य ही। जीवन तो हमेशा वर्तमान में ही जिया जाता है। इसलिए भारतीय चिन्तकों की यह मान्यता रही है कि समय का प्रबन्धन केवल और केवल मात्र वर्तमान में ही सम्भव है। सदैव वर्तमान के क्रिया-कलापों को सार्थक बनाने का प्रयत्न ही सम्यक् जीवन-प्रबन्धन कहाँ जा सकता है। भूत गुजर चुका है वह अब हमारे हाथ में नहीं है, भविष्य कैसा होगा यह भी पूर्णतयाः हमारे अधिकार क्षेत्र में नहीं

है। भूतकाल का रोना रोना और भविष्य के सुनहले सपने संजोना यह मनुष्य के लिए उचित नहीं है। उसका सारा प्रयत्न और पुरुषार्थ इसी में हैं कि उसे जो अवसर उपलब्ध हुआ है उसका सम्यक् ढंग से उपयोग करे, यही समय प्रबन्धन है।

मनुष्य जो भी करता है, वह सब उसके मन, वाणी और शरीर के माध्यम से ही सम्भव होता है। हमारा समग्र आचार और व्यवहार शरीर के माध्यम से ही सम्भव होता है। अतः शरीर को सुनियोजित ढंग से सही दिशा में नियोजित करना ही शरीर प्रबन्धन है। इसमें दो तत्त्व प्रमुख होते हैं, एक स्वास्थ्य और दूसरा शारीरिक अंगों का संरक्षण। इन्हें हम पोषण और सुरक्षा के प्रयत्न कह सकते हैं। शरीर का पोषण आवश्यक है, क्योंकि यदि शरीर और उसके अंगों का सम्यक् ढंग के पोषण नहीं होगा, तो शरीर अस्वस्थ हो जाएगा और अस्वस्थ शरीर के माध्यम से जीवन को जिस प्रकार जिया जाना चाहिए हम नहीं जी पायेंगे। इसके लिए हमें पूरी तरह से स्वास्थ्य-विज्ञान और आहार-विज्ञान के नियमों को समझकर, उनका पालन करना होगा। वे सारे तत्त्व जो शारीरिक रूग्नता और मानसिक तनाव को जन्म देते हैं, उनका वर्जन करना होगा। हमें सम्यक् आहार के माध्यम से शरीर का पोषण करना होगा, तभी हम शरीर को स्वस्थ रख पायेगे। शरीर के सम्बन्ध में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमारी जीवनयापन शैली ऐसी हो जिसमें शरीर की सुरक्षा की भी सम्यक् व्यवस्था भी हो। अति साहस और अति भोग दोनों ही शरीरिक सुरक्षा में बाधक होते हैं। वासना के अधीन होकर अधिक भोग और शरीर की क्षमता का ध्यान नहीं रखते हुए कार्य करना दोनों ही शरीर प्रबन्धन में बाधक होते हैं। शरीर जीवन-जीने का एक सम्यक् साधन है, उसका उपयोग भी सम्यक् तरीके से होना चाहिए, शरीर प्रबन्धन हमें यही सिखाता है। यहाँ भी वासना और विवेक का सम्यक् समायोजन आवश्यक होता है,

अतः व्यक्ति को यह सीखना भी आवश्यक होता है कि वह अपने शरीर और शारीरिक शक्तियों का विनियोग सम्यक् प्रकार से करें।

मनुष्य एक मनोदैहिक रचना है, अतः उसे दैहिक और मानसिक दोनों आधारों पर सम्यक् रूप से जीवन जीना होगा। जीवन-प्रबन्धन का उद्देश्य यह भी है कि वह न केवल स्वस्थ शरीर के माध्यम से जी सके, अपितु स्वस्थ मन से भी जी सके। आज जो वैश्विक समस्याएँ हैं, उसमें मानसिक तनाव एक प्रमुख कारण है, क्योंकि सम्यक् जीवन के लिए स्वस्थ मानसिकता आवश्यक है। यदि व्यक्ति मानसिक विकारों और तद्जन्य तनावों का सम्यक् प्रबन्धन करने में सफल नहीं होता है, तो भी वह अपने जीवन को सही ढंग से नहीं जी पाता है। मानसिक विकार और उनसे उत्पन्न होने वाले तनाव क्यों, कब और कैसी परिस्थिति में उत्पन्न होते हैं, यह समझना भी आवश्यक है और उनसे मुक्त रहना भी आवश्यक है। यह सत्य है कि तनाव के कारण आन्तरिक और बाह्य दोनों हो सकते हैं, फिर भी तनाव न केवल एक मनोदैहिक संरचना है, अपितु वह एक मानसिक सत्य भी है। तनावों से मुक्त होकर समता और शांतिपूर्ण जीवन कैसे जिया जाए यह भी जीवन प्रबन्धन के माध्यम से ही जाना जा सकता है। अतः जीवन में मानसिक प्रबन्धन भी जीवन प्रबन्धन का एक महत्वपूर्ण आधार है।

ऊपर हमने जीवन प्रबन्धन के जो उपाय बताए उन सब का सम्बन्ध मूलतः व्यक्ति के वैयक्तिक जीवन से है, किन्तु कुछ समाजगत तथ्य भी है, जो हमारे जीवन प्रबन्धन में साधक या बाधक होते हैं। इनमें वाणी प्रबन्धन, पर्यावरण प्रबन्धन, अर्थ प्रबन्धन, समाज और धार्मिक व्यवहार प्रबन्धन प्रमुख हैं। यह सत्य है कि ये तथ्य हमारे परिवेश से जुड़े हुए हैं, और समाज के अन्य घटकों से हमारे सम्बन्ध को बनाते हैं।

संसार में जितने भी प्राणी है, उन सब में मनुष्य की यह विशेषता है कि उसे अपनी अभिव्यक्ति के लिए भाषा या वाणी भी मिली हुई है।

वाणो का सम्यक् नियोजन न होने पर भी जीवन में अनेक विसंगतियाँ आ जाती है। वाणी एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है। किन्तु यह अभिव्यक्ति कहाँ, कब और कैसे हो, इसका सम्यक् रूप से ध्यान रखना आवश्यक होता है। जहाँ अपनी वाणी के माध्यम से हम अपने जीवन में समाज से मधुर संबंधों का स्थापन कर सकते हैं, बही वाणी ही एक ऐसा माध्यम है, जो हमारे जीवन को स्वर्ग या नरक बना सकती है। व्यक्ति के जीवन में अभिव्यक्ति आवश्यक होती है। यह अभिव्यक्ति हम शरीर और वाणी के माध्यम से ही प्रस्तुत करते है, किन्तु कहाँ, कब और किन परिस्थितियों में किस प्रकार से अभिव्यक्ति करना है, यह बोध होना आवश्यक है, एक गलत अभिव्यक्ति जहाँ व्यक्ति और समाज में भी विसवांद उत्पन्न कर देती है, वही एक सम्यक् अभिव्यक्ति जीवन में सुसंवाद उत्पन्न कर जीवन को सरस बना देती है। व्यक्ति का परिवार और समाज से जुड़ना और टूटना दोनों ही उसकी अभिव्यक्ति पर निर्भर करते हैं। अतः जीवन में वाणी का अथवा अभिव्यक्ति का सम्यक् प्रस्तुतीकरण कैसे हो, इसका प्रशिक्षण भी आवश्यक है। जीवन प्रबन्धन के अन्तर्गत हमें यह जानना होगा कि वाणी का प्रयोग अथवा अपनी दैहिक अभिव्यक्तियों का प्रयोग हम कैसे, कब, कहां करे ताकि जीवन में समरसता बनी रहे। यहाँ विशेष रूप से समझने योग्य तथ्य यह है कि अभिव्यक्ति के सम्यक् प्रस्तुतीकरण के माध्यम से ही व्यक्ति जीवन में सुसंवाद और समरसता को प्राप्त कर सकता है। वाणी और अभिव्यक्ति के दुरुपयोग के क्या परिणाम होते हैं इसे हम महाभारत से सम्यक् प्रकार से जान सकते हैं। अतः जीवन प्रबन्धन में वाणी का सम्यक् प्रबन्धन भी आवश्यक है।

आज मनुष्य के लिए पर्यावरण प्रबन्धन की भी एक महती आवश्यकता है, क्योंकि प्रदूषित पर्यावरण से न केवल मनुष्य जीवन को खतरा है, अपितु उसके साथ सम्पूर्ण प्राणीय सृष्टि का प्रश्न भी जुड़ा

हआ है। यदि जल और वायु प्रदूषित हो जाते हैं, तो सम्पूर्ण प्राणीय जीवन ही समाप्त हो जावेगा। न केवल इतना ही, अपितु वनस्पति जगत ही समाप्त हो जावेगा और वनस्पति जगत के अभाव में प्राणीय जगत भी जीवित नहीं रहेगा और प्राणी जगत के अभाव में जगत की जड़ वस्तुएँ चाहे रहे उनके उपयोगकर्ता के अभाव में उनका कोई मूल्य ही नहीं रह जावेगा। इस प्रकार पर्यावरण प्रबन्धन का तत्त्व भी जीवन प्रबन्धन के साथ जुड़ा हुआ है।

चाहे जीवन-प्रबन्धन शब्द आधुनिक लगता हो, किन्तु वह तो एक सम्यक् जीवनशैली का विकास है। वह हमें यही सिखाता है वैयक्तिक और सामाजिक जीवन कैसे जीना चाहिए? वह हमारे यथार्थ जीवन को एक आदर्श जीवन बनाने की एक कला है।

वस्तुतः व्यक्ति एकाकी प्राणी नहीं है। मनुष्य की एक परिभाषा उसे सामाजिक प्राणी के रूप में भी देखती है। यदि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तो उसे समाज में कैसे जीवन जीना है, यह भी जानना होगा। साथ ही उसे समाज में पारस्परिक व्यवहार का सम्यक् तरीका भी सीखना होगा। इसे ही जैन दर्शन में सम्यक् चारित्र के रूप में जाना जाता है। समाज एक वृहद् इकाई है, यद्यपि उस इकाई के केन्द्र में मनुष्य है, किन्तु दूसरी ओर एक सभ्य मनुष्य समाज की ही देन है। उसने पारस्परिक व्यवहार का ढंग या दूसरे शब्दों में समाज में जीवन जीने का ढंग समाज से सीखा है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे पर आधारित है, वे परस्पर सापेक्ष हैं। व्यक्ति के बिना समाज और समाज के बिना व्यक्ति का कोई अर्थ नहीं है। सामाजिक जीवन शैली मानव समाज की एक विशेषता है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि समाज मात्र व्यक्तियों का समूह या भीड़ नहीं है, उसका अपना एक तंत्र या व्यवस्था है। यह सामाजिक व्यवस्था भी जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति का एक साधन मात्र है। स्वहित–साधन या स्वार्थ–पूर्ति इस सभ्य समाज

में मनुष्य का जीवन-लक्ष्य नहीं है। समाज स्वार्थ या स्वहित-साधन के मूल्य पर खड़ा नहीं होता है, उसका आधार त्याग और समर्पण के मूल्य हैं। स्वार्थी व्यक्तियों का समूह समाज नहीं होता है, दूसरे शब्दों में चोरों, डाकुओं या लुटेरों का समूह समाज नहीं होता है। समाज के निर्माण हेतु स्वहित का त्याग या स्वार्थ का त्याग आवश्यक होता है। उसका आधार सहयोग एवं मैत्री की भावना है। ये आदर्श जीवन मूल्य भी आज हमें शिक्षा के माध्यम से प्राप्त होते हैं, किन्तु यह शिक्षा किसी स्कूल एवं कॉलेज में नहीं होती है, अपितु घर-परिवार और समाज में ही होती है। स्वस्थ मनुष्य एवं स्वस्थ समाज के लिए इन जीवन मूल्यों का प्रशिक्षण आवश्यक है किन्तु इसकी प्राथमिक पाठशाला घर परिवार, समाज और धर्म ही हैं। सद्-संस्कारों का वपन जीवन प्रबन्धन की शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। वस्तुतः समाज प्रबन्धन समाज का प्रबन्धन नहीं है, वह अपनी जीवन शैली का प्रबन्धन है। वह समाज के दूसरे सदस्यों के प्रति हमारी सम्यक् जीवन शैली या सम्यक् व्यवहार का ढंग सीखता है। आज सामान्य जन की एक मान्यता यह है कि समाज सुधार से व्यक्ति का सुधार होगा, किन्तु यह एक गलत अवधारणा है। समाज का प्रमुख घटक व्यक्ति है, जब तक वैयक्तिक स्तर पर सुधार के प्रयत्न नहीं होगे—समाज सुधार सम्भव नहीं है। भारतीय चिन्तन में जो चार पुरुषार्थ माने गये हैं और उनमें से तीन–धर्म, अर्थ और काम समाजाधारित है।

धर्म व्यवस्था या धर्मतन्त्र का मुख्य कार्य तो सम्यक् सामाजिक जीवन शैली का विकास करना ही है। एक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का निर्माण त्याग एवं संयम के जीवन मूल्यों को जीवन व्यवहार में स्थान देने से ही सम्भव है। धर्म, समाज या परिवार के दूसरे सदस्यों के हित साधन हेतु त्याग समर्पण एवं सेवा के जीवन मूल्यों को आत्मसात् करना होगा। धर्म एक नियामक जीवन मूल्य है, दूसरे शब्दों

में धर्म, अर्थ, काम और पारस्परिक व्यवहार का नियामक है। इसलिए कहा जाता है कि 'आचारो प्रथमः धर्मः' धर्म केवल जानने या मानने की वस्तु नहीं है, वह सम्यक् ढंग से जीवन जीने का एक तरीका भी है।

अर्थ और काम जीवन के आवश्यक अंग हैं, उनकी सम्पूर्ति भी आवश्यक है, किन्तु उनका संयमन आवश्यक है। क्योंकि अर्थ और काम जीवन के साध्य नहीं है, साधन है। साधन आवश्यक होते हैं, किन्तु मूल्यवत्ता साध्य को पाने में निहित होती है। साधन को ही साध्य बना लेना या मान लेना ही जीवन की सबसे भयंकर भूल है, धर्म में इसे ही मिथ्यात्व कहा गया है। साधन को साध्य की प्राप्ति के लिए अपनाया है, किन्तु हमारी रागात्मकता या आसक्ति उसे ही साध्य मान लेती है और ऐसी स्थिति में मूल लक्ष्य कहीं दृष्टि से ओझल हो जाता है। अर्थ और काम (रोटी, कपड़ा, मकान आदि) मूलतः आत्म शान्ति के हेतु हैं, किन्तु जब व्यक्ति इन्हीं साधनों को ही साध्य बना लेता है, तो वह अपने मूल लक्ष्य आत्मतोष या आत्मशान्ति से वंचित हो जाता है। साधनों को अपनाना आवश्यक है, किन्तु ध्यान रहे कि ये साधन कहीं साध्य न बन जाये, अन्यथा तृष्णाजन्य दुःख के महासागर से पार जाना कठिन होगा। जीवन प्रबन्धन का मूल लक्ष्य भी एक ऐसी जीवन शैली का विकास करना है, जो मानव प्रजाति को सम्यक् सुख (आनन्द) और शांति प्रदान कर सके। उसका सम्यक् दिशा में आध्यात्मिक विकास हो सके तथा वह शाश्वत जीवन-मूल्य आत्मशांति को प्राप्त हो सके।

जैनाचार्य वट्टकेर-कृत मूलाचार मनन और मीमांसा

डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य

इस मंगल श्लोक को शास्त्र स्वाध्याय के प्रारम्भ में तथा दीपावली के बही-पूजन व विवाह आदि मंगल प्रसंगों पर पाठ किया जाता है। इनका समयकाल लगभग प्रथम शताब्दी का माना जाता है। कुन्दकुन्द का अप्रतिम प्रभाव विशेष तौर पर दिगम्बर आम्नाय के आचार्यों में तथा उनकी कृतियों का महत्त्व दिगम्बर-श्वेताम्बर उभय आम्नायों में ही विशेष श्रद्धापूर्वक स्वीकृत किए गए हैं। कुन्दकुन्द की प्रामाणिकता उनके परवर्ती शास्त्र रचयितागणों से हमें प्राप्त होता है जहाँ ये ग्रन्थकार आचार्य, स्वयं के किसी कथन को सिद्ध करने के लिए आचार्य कुन्दकुन्द विरचित शास्त्रों का प्रमाण देते हैं। कुछ एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं–

आचार्य देवसेन (समयकाल विक्रम संवत् 990) अपने 'दर्शनसार' नामक ग्रन्थ में मिलते हैं—

जइ पउमणंदिणाहो सीमंधर सामिदिव्वणाणेन।
णा विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति।।

अर्थात् विदेह क्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर सीमंधर स्वामी से प्राप्त किए हुए दिव्य ज्ञान के द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथ ने (आचार्य कुन्दकुन्द ने) बोध नहीं प्रदान किया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते?[26]

---

26. अधिक जानकारी के लिए देखें— शास्त्री, डॉ. नेमीचन्द्र, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, खण्ड एक और दो एवं आचार्य, जितेन्द्र, आचार्य कुन्दकुन्द, नवलखा प्रकाशन, जौनपुर, पृष्ठ 162-179

चन्द्रगिरि शिलालेख में उत्कीर्ण है कुन्दकुन्द की प्रशस्ति—

'वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्दः। कुन्दप्रभा प्रणयि कीर्तिविभूषिताशः।

यश्चारू-चरण-करामबुजचंचरीकश्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम्'।।[27]

'कुन्दपुष्प की प्रभा को धारण करने वाले जिनकी कीर्ति के द्वारा दिशाएँ विभूषित हुई हैं, जो चारण ऋद्धिधारी महामुनियों के हस्तकमलों के भ्रमरसदृश थे तथा जिस पवित्रात्मा ने भरत क्षेत्र में श्रुत की प्रतिष्ठा की है, वे विभु कुन्दकुन्द इस पृथ्वी पर किसके द्वारा वन्द्य नहीं है?'[28]

विन्ध्यगिरि का शिलालेख भी कुन्दकुन्द सम्बन्धित अपनी उक्ति के लिए विख्यात है—

..... कोण्डकुन्दो यतीन्द्रः।।
रजोभिरस्पृष्टतमत्त्वमन्त वाह्ये अपि संव्यत्रजयितुं यतीशः।
रजःपदं भूमितलं विहाय चचार मन्ये चतुरंगुलं सः।।

यतीश्वर कुन्दकुन्दस्वामी रजःस्थान को (भूमितल को) छोड़कर चार अंगुल ऊपर आकाश में चलते थे। (इस बात का आभ्यंतरीण भाव यह है कि आचार्य कुन्दकुन्द अन्तरंग में रागादि मल से तथा बाह्य में मान-अपमान, निन्दा, आलोचना आदि धूलिस्वरूप भावों से अस्पृष्ट थे।)[29] जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश में आचार्य कुन्दकुन्द पर जिनेन्द्र वर्णी लिखते हैं—

---

27. Reddy, Prof, V.Kiriteshwara, Jaina Epigraphs and Inscriptions : A Socio-Historic Study, 1991, pages, 45-63
28. संकालिया, डॉ. गिरिजाप्रसाद, जैन शिलालेखों में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज, वीर प्रकाशन, 1978, पृष्ठ 98.
29. देखिए Rao, V.S. 'Kundakunda and Jain Paleography' (A special treatise on Vindhyagiri Inscriptions), p. 243

'आप अत्यन्त वीतरागी तथा अध्यात्मवृत्ति के साधक थे। आपके अनेक नाम प्रसिद्ध हैं। अध्यात्म प्रधानी होने पर भी आप सर्व विषयों के पारगामी थे और इसीलिए आपने सर्व विषयों पर ग्रन्थ रचे हैं।*****

इनके आध्यात्मिक ग्रन्थों को पढ़कर अज्ञानी जन उनके अभिप्राय की गहनता को स्पर्श न करने के कारण अपने को एकदम शुद्ध, बुद्ध व जीवन्मुक्त मानकर स्वच्छन्दचारी बन जाते हैं, परन्तु वे स्वयं महान चरित्रवान थे। *****

क्या ही अच्छा हो कि अज्ञानी जन उनके शास्त्रों को पढ़कर संकुचित एकान्तदृष्टि अपनाने के बजाय व्यापक अनेकान्त दृष्टि अपनाए'।[30]

आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित ग्रन्थ हैं—

1. नियमसार, 2. पंचास्तिकाय, 3. प्रवचनसार, 4. समयसार, 5. बारस अणुवेक्खा, 6. दंसणपाहुड़, 7. चारित्रपाहुड़, 8. सुत्तपाहुड़, 9. बोधपाहुड़, 10. भावपाहुड़, 11. मोक्खपाहुड़, 12. सीलपाहुड़, 13. लिंगपाहुड़, 14. दसभत्तिसंगहो।

कुन्दकुन्द को कुछ विद्वान भद्रबाहु श्रुतकेवली का शिष्य मानते रहे हैं। डॉ. विद्याधर पालीवाल इन्हें भद्रबाहु का परम्परानुगत शिष्य मानते हैं, जिसकी पुष्टि आर्यिका ज्ञानमती जी ने मूलाचार के उपोद्घात में भी स्पष्ट किया है।[31]

आचार्य कुन्दकुन्द की तीन कृतियाँ—पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार सम्भवतः वेदान्त के प्रस्थान के साम्य पर 'प्राभृतत्रय'

---

30. वर्णी, जिनेन्द्र, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग 2, पृष्ठ 126

31. देखिए, पालीवाल, डॉ. विद्याधर, कुन्दकुन्दाचार्य का जैन दर्शन पर प्रभाव, (लघु शोध पुस्तिका) वेद-भारती शोध संस्थान, 1986, पृष्ठ 42

क नाम से अभिहित किया जाता है। इससे यह ध्वनित होता है कि जैनों के लिए ये कृतियाँ उतनी ही पवित्र और आधिकारिक हैं, जितनी वेदान्तियों के लिए 'प्रस्थानत्रयी' अर्थात् उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता।[32]

अब 'मूलाचार' के रचयिता के रूप में क्या कुन्दकुन्द ही वट्टकेराचार्य हैं या दोनों अलग हैं? इस परिप्रेक्ष्य में हम दोनों पक्षों के विद्वानों का मत जानने की चेष्टा करेंगे।

'मूलाचार' को दिगम्बर परम्परा में 'आचारांग' के रूप में माना जाता है। आचार्य वसुनन्दि टीकाकार ने 'मूलाचार' के मंगलाचरण की वृत्ति में यह उल्लेख किया है कि आचारांग ग्रन्थ का उद्धार कर प्रस्तुत 'मूलाचार' ग्रन्थ की रचना की गई है।[33] मुनिजनचिन्तामणि नामक एक कर्नाटक टीका में आचार्य कुन्दकुन्द की रचना होने की बात कहीं गई है। कहा गया है—

'मूलाचाराख्यशास्त्रं वृषभजिनवरोपज्ञमर्हत्प्रवाहादायातं कुन्दकुन्दाह्वयचरमलसच्चारणेसु प्रणीतम्।। तद व्याख्यां वासुनन्दीमबुध विलिखनावाचनाना या मा सभक्त्या.....संशोध्याध्यैतुमहमिकृत यति कृति.....।'205[34]

मुडबिद्री (कर्णाटक) में स्थित पं. लोकनाथ शास्त्री सरस्वती भण्डार (जैनमठ) की मूलाचार की ताडपत्रीय प्रतिसंख्या 56 के अन्त में आचार्य वसुनन्दिकृत द्वारा रचित होने की सूचना है।[35]

अब आचार्य कुन्दकुन्द की रचनाओं के साथ मूलाचार के सूत्रों

---

32. जैन, डॉ. रमेशचन्द्र जैन, दिगम्बरत्व की खोज, अहिंसा मन्दिर प्रकाशन, 1997, पृष्ठ 326
33. देखिए, विद्यारण्य, स्वामी, भागवतधर्म ओ जैनधर्म, पृष्ठ 125-126
34. Shastri, R.S. 'Notes on the Mulacara', APP Publications, p. 189-192
35. Rao, V.S., Kundakunda and Jain Paleography, p. 153

की पारस्परिक अंतःसम्बन्धीय समीक्षा करें। 'समयसार' की अपनी सार्विक संकलन में एक गाथा पाई जाती है। वह गाथा है—

'अरसमरूबमगंधमव्क्तं चेदनाणुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।'49।।

यही समान गाथा 'प्रवचनसार' में क्रमांक 18 पर आई है। नियमसार में यह गाथा क्रमांक 46 पर है। 'पंचास्तिकाय' ग्रन्थ में क्रमांक 127 पर है तथा 'भावपाहुड़' में यह 64वीं गाथा है।

'समयसार' की एक और गाथा इसीप्रकार है—

'आदा हु मज्झणाणे आदा में दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा में संवरे जोगे।।277।।'

यही गाथा 'नियमसार' में 100 संख्यक गाथा है तथा भावसंग्रह में 58वें संख्यक।

जब आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों को ध्यान से देखते हैं—तब हमें उनके ग्रन्थों एवं 'मूलाचार' में उपरोक्त प्रकार के कई गाथागत साम्य दीख जाते हैं। कुछ एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

'भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं ।।115।।'

'समयसार' ग्रन्थ में इस गाथा को 15वीं संख्यक स्थान मिला है। 'मूलाचार' में भी यह गाथा दर्शनाचार का वर्णन करते हुए पाँचवें अध्याय के छठे क्रमांक पर आई है। अब दूसरी गाथा देखें—

रागो वंधइ कम्मं मुच्चइ जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवदेसो समासदो बंधमोक्खाणं।।50।।

उपरोक्त गाथा मूलाचार के पंचम अध्याय में है। 'तम्हा कम्मेसु मा रज्ज' इस पाठांतर के साथ (अन्तिम चरण में) 'समयसार' में यही गाथा पाई जाती है।

'नियमसार' (कुन्दकुन्द रचित) ग्रन्थ के साथ 'मूलाचार' का सविशेष साम्य है। 'नियमसार' के अन्तर्गत मुनिगणों के व्यवहार और 'निश्चय चारित्र' का वर्णन किया गया है। इन दोनों में व्यवहार चारित्र गौण है, निश्चय चारित्र ही विस्तार में है और मुख्य है। नियमसार तथा मूलाचार में ऐसी अनेक गाथाएँ हैं जो एक से दूसरे में ज्यों की त्यों पाई जाती हैं।[36]

'दर्शन पाहुड़' की यह निम्नोक्त गाथा 'मूलाचार' में भी मिलती है-

'जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूतं।
जरमरणवाहिबेयण खयकरणं सव्वदुक्खाणं ।।95।।'

'मूलाचार' के रचयिता आचार्य कुन्दकुन्द हैं इसका प्रकृष्ट प्रमाण उनकी स्वतन्त्र रचना द्वादशानुप्रेक्षा है। 'मूलाचार' में भी द्वादशानुप्रेक्षा के वर्णन हैं। दोनों जगहों पर प्रारम्भ की दोनों गाथाएँ समान हैं।

यथा— **'सिद्धे णमंसिदूण य झाणुत्तमखविय दीहसंसारे।**
दह दह दो दो य जिणे दह दो अणुपेहणा वुच्छं।।1।।'

(मूलाचार 8)

आशय है—जिन्होंने उत्तम ध्यान के बल से दीर्घ संसार को नष्ट कर दिया, ऐसे सिद्धों को तथा दश, दश, दो और दो (10-10-2-2) कुछ चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार करके मैं दस व दो (12) अर्थात् द्वाद्वश अनुप्रेक्षाओं की बात कहूँगा। ये बारह अनुप्रेक्षा हैं—

1. अनित्य-अध्रुव, 2. अशरण, 3. संसार, 4. एकत्व, 5. अन्यत्व, 6. अशुचि, 7. आस्रव, 8. संवर, 9. निर्जरा, 10. लोक, 11. बोधिदुर्लभ और 12. धर्म।

उपरोक्त क्रमानुसार 'तत्त्वार्थसूत्र' के द्वादश अनुप्रेक्षाओं को सुचिबद्ध कर लिया गया है। ध्यान रखने की बात यह है कि 'मूलाचार' में तृतीय संसार अनुप्रेक्षा को पाँचवें क्रम पर रखा गया है। दसवें क्रम

36. ज्ञानमती, आर्यिका, मूलाचार, उपोद्घात

को लोक भावना को छठे क्रम पर लिया गया है। विद्वानों का मत है कि आचार्य कुन्दकुन्द के समयकाल तक बारह अनुप्रेक्षाओं का यही क्रम रहा होगा। कुन्दकुन्द के पश्चात आचार्य उमास्वाती (उमास्वाति) आचार्य पट्ट पर पदासीन हुए। बारह अनुप्रेक्षाओं का जो क्रम कुन्दकुन्द के समय देखा जाता है, उमास्वाति के समय कदाचित वह क्रम बदल गया होगा।

अस्तु, 'द्वादशानुप्रेक्षा' ग्रन्थ में इसी क्रम से ही बारह अनुप्रेक्षाओं का विस्तार हुआ है। 'मूलाचार' में भी उसी क्रम से अलग-अलग अनुप्रेक्षाओं का वर्णन किया गया है। इस प्रकरण से भी मूलाचार कुन्दकुन्द कृत है, यह बात पुष्ट होती है।

'प्रतिक्रमण' के कुछ अन्य पाठ ज्यों के त्यों आचार्य कुन्दकुन्द की रचना में पाए जाते हैं—

'णिस्संकिद णिक्कंखिद णिव्विदिगिंच्छा अमूढ़दिट्ठिय य।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा य ते अट्ठ।।[37]'

उपरोक्त गाथा प्रतिक्रमण में है। यही की यही मूलाचार में तथा चारित्रपाहुड़ में भी हैं। और भी कई गाथाएँ हैं, जो प्रतिक्रमण में जिसप्रकार हैं, तद्वत् वे मूलाचार में भी हैं।[38]

ये सारे उदाहरण इस बात का प्रमाण देते हैं कि 'मूलाचार' कुन्दकुन्द द्वारा रचित है।

---

37. प्रतिक्रमण पाक्षिक, मूलाचार अध्याय 5, गाथा 4, चारित्रपाहुड़ गाथा 7

38. उदाहरणस्वरूप कुछ श्लोक यहाँ दिए जा रहे हैं–
खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्तीमे सव्व भूदेसु बेटं भज्झं ण केण वि।।43।। मू. आ.
रायबंध पदोसं च हरिसं दीणभावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे।।44।। मू. आ.
मिच्छत्तं वेदरागा तहेव हस्सादिया च छद्दोसा।
चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भंतरं मंथा।।210।। मूलाचार 7

इधर पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री यह मानते हैं कि इसमें सन्देह नहीं, कि मूलाचार कुन्दकुन्द का ऋणी है, किन्तु कुन्दकुन्द रचित प्रतीत नहीं होता। कुन्दकुन्द रचित नियमसार, प्रवचनसार, समयसार आदि ग्रन्थों में जो रचना वैशिष्ट्य, निरुपण की प्रांजलता, तथा अध्यात्म का पुट है, वह मूलाचार में नहीं। प्रवचनसार के अन्त में आगत मुनि धर्म के संक्षिप्त, किन्तु सारपूर्ण वर्णन से मूलाचार के किन्हीं वर्णनों में उनके साथ एकरूपता भी नहीं है।[39]

तब आचार्य वट्टकेर के लिए यह निर्णय लिया जाता है कि कुन्दकुन्दाचार्य का ही अपर नाम वट्टकेर होगा। इसमें सन्देह नहीं कि 'मूलाचार' बहुत पुराना है। पण्डित जिनदास फडकुले ने भी कुन्दकुन्द को ही वट्टकेर सिद्ध किया है। यह माना जाता है कि भाषावैज्ञानिक परिवर्तन के आधार पर कुन्दकुन्दाचार्य ने 'परिकर्म' नामक जो षट्खण्डागम पर वृत्ति लिखी है, उससे 'वृत्तिकार' शब्द से वृत्तिकार-वट्टिकार-वट्टकेर नाम निष्पादित हुआ होगा।[40] टीकाकार वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती ने आचारवृत्ति टीका के प्रारम्भ में वट्टकेर नाम का उपयोग किया, अन्यथा उसी वृत्ति (टीका) के अन्त में वे कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत मूलाचाराख्य विवृत्तिः ऐसा उल्लेख न करते। यह भी माना जाता है कि वट्टकेर मूल नाम तो नहीं पर (जन्म) ग्राम का नाम हो सकता है।

इस प्रकार सामान्य दृष्टि से मूलाचार के रचयिता वट्टकेर ही आचार्य कुन्दकुन्द हैं, ऐसी मान्यता है।

मूलाचार के टीकाकार : वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती और मेघचन्द्राचार्य :

'मूलाचार' एक प्रधान जैन शास्त्रग्रन्थ की मर्यादा प्राचीन काल से प्राप्त करती आई है। इस विशिष्ट ग्रन्थ के दो प्रधान टीकाकार हैं- आचार्य वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती और आचार्य मेघचन्द्र (मेघचन्द्राचार्य)।

---

39. शास्त्री, कैलाशचन्द्र, प्रस्तावना, भगवती आराधना, पृष्ठ 48

40. शर्मा, डॉ. वासुदेवशरण, मूलाचार में ऐतिहासिकता का संदर्भ, पृष्ठ 196

ऐतिहासिक समयकाल के दृष्टिकोण से, इनमें से वसुनन्दि पूर्ववर्ती है या मेघचन्द्राचार्य यह अभी भी विद्वानों में विवाद का विषय है। आचार्य वसुनन्दि ने संस्कृति में 'आचारवृत्ति' नामक मूलाचार पर टीका रची है और आचार्य मेघचन्द्र ने 'मुनिजनचिन्तामणि' नाम से कन्नड़ भाषा में इसकी टीका रची हैं।

ध्यान देने की बात यह है वसुनन्दि आचार्य ने ग्रन्थकर्ता का नाम प्रारम्भ में 'श्रीवट्टकेराचार्य' दिया है, जबकि मेघचन्द्राचार्य ने 'कुन्दकुन्दाचार्य' कहा है।

आद्यन्त पठन के बाद यह स्पष्ट प्रतीत होता है दोनों टीकाग्रन्थों के आधार स्वरूप यह 'मूलाचार' एक ही ग्रन्थ है। एक ही आचार्य की कृति है, न कि दो हैं या दो आचार्यों की रचनाएँ हैं। गाथाएँ सभी ज्यों की त्यों हैं। मूल अन्तर संख्या में है। आचार्य वसुनन्दिकृत टीकाओं में गाथाओं की संख्या बारह सौ बावन है (1252)। दूसरी तरफ मेघचन्द्राचार्य की यह संख्या चौदह सौ तीन (1403) तक पहुँची है।

दोनों गाथाएँ पास-पास रखकर पाठ करने से कई बातें स्पष्ट हो उठती हैं। कहीं-कहीं यह बात परिलक्षित होती है कि मेघचन्द्राचार्य ने जो गाथाएँ अधिक ली हैं, वे आचार्य वसुनन्दि को मान्य थी।

'अरहंत नमस्कार'[41] की गाथा को टीकाकारों ने अपनी-अपनी टीका में यथास्थान लिया है। आगे सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु के नमस्कार की भी ऐसी ही ज्यों की त्यों गाथाएँ हैं। उन चारों गाथाओं को आचार्य वसुनन्दि ने अपनी टीका में छायारूप से ले लिया है। मेघचन्द्राचार्य ने चारों गाथाओं को ज्यों की त्यों लेकर टीका कर दी। प्रकरणों के अध्ययन से यह निश्चय हो जाता है कि मेघचन्द्राचार्य ने जो अधिक गाथाएँ ली हैं, वे क्षेपक या अन्यत्र से संकलित नहीं है, बल्कि मूल ग्रन्थकर्ता की रचनाएँ हैं।

---

41. अरहंत णमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमदि।
तो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेन ।।5।।

आवश्यक अधिकार के आगे पार्श्वस्थ, कुशील आदि पाँच प्रकार के शिथिलाचारी मुनियों का नाम आया है। उनके प्रत्येक लक्षण पाँच गाथाओं में किए गए हैं। मेघचन्द्राचार्य कृत टीका की प्रति ये वे गाथाएँ हैं, किन्तु वसुनन्दि ने उन पाँचों के लक्षण ले लिए हैं।

पण्डित जिनदास फडकुले को सन् 1944 (वीर संवत् 2471) में चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महाराज ने 'मूलाचार' की एक कन्नड़ टीका संवलित हस्तलिखित प्रति प्रदान की थी। मूलाचार की प्रस्तावना में स्वयं पण्डित जिनदास लिखते हैं—

'इस मूलाचार का अभिप्राय दिखानेवाली एक कर्नाटक भाषा टीका हमको चारित्र-चक्रवर्ती 108 शान्तिसागर महाराज ने दी थी। उसमें यह मूलाचार ग्रन्थ श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित है, ऐसा प्रति अध्याय की समाप्ति में लिखा है तथा प्रारम्भ में एक श्लोक तथा गद्य भी दिया है। उस गद्य से भी यह ग्रन्थ कुन्दकुन्दाचार्य कृत' है, ऐसा सिद्ध होता है।"[42]

आगे उन्होंने लिखा है— "हमने कनडी (कन्नड़) टीका की पुस्तक सामने रखकर उसके अनुसार गाथा का अनुक्रम लिया है, तथा वसुनन्दि आचार्य की टीका का प्रायः भाषान्तर इस अनुवाद में आया है।"[43]

अतः दो टीकाकारों द्वारा एक ही 'मूलाचार' नामक कृति की व्याख्या हुई है। 'मूलाचार' के रचयिता दो नहीं बल्कि एक हैं और वे कदाचित् आचार्य कुन्दकुन्द हैं, जो 'वट्टकेर' संज्ञात्मक सम्बोधन से भी जाने जाते रहे हैं।

---

42. 'मूलाचार' (कुन्दकुन्दाचार्य की प्रस्तावना), पृष्ठ 14

43. वहीं, पृष्ठ 16

यह प्रस्तुत निबन्ध के लेखक का परम सौभाग्य है कि जैनविद्या तथा जैन दर्शन के महाचार्य, प्राच्य ज्ञान के आर्ष स्वरूप, प्रज्ञा की साकार प्रतिमा, वात्सल्यमूर्ति, परमश्रद्धेय गुरुवर डॉ. सागरमलजी जैन ने पत्र द्वारा आशीर्वचन तथा मार्गदर्शन देते हुए इस अल्पज्ञ शोधकर्ता की ज्ञानचक्षु उन्मीलित की। उनके द्वारा प्रदत्त सारे सुझाव व उपदेश इस निबन्ध के पुनः प्रकाशन में-भविष्य में संयोजित किया जाएगा। गुरुवर के चरणों में कोटिशः प्रणाम।

कुवलय माला

श्री केवल मुनि

कुवलयमाला के साथ पाणिग्रहण :

कुवलयचन्द्र उठा और राजा विजयसेन के पास जा पहुँचा। योग्य अभिवादन के बाद कुमार बैठ गया। उसका उदास मुख देखकर राजा ने पूछा–

कुमार! आज उदास और चिन्तित क्यों हो?

उत्तर के बजाय कुमार ने पत्र हाथ में दे दिया। विजयनगरी नरेश पत्र पढ़कर बोले–

मैं शीघ्र ही तुम्हारे गमन की व्यवस्था करता हूँ।

राजा ने शीघ्र ही गमन की तैयारियाँ करा दी। शुभ मुहूर्त्त में जामाता और पुत्री को विदा किया। दोनों को गजारूढ़ करके नगरी में घुमाया गया। नगर निवासी उन्हें देखकर धन्य-धन्य कह रहे थे। कोई कुवलयमाला को सौभाग्यशालिनी कहता तो कोई कुवलयचन्द्र को और कोई-कोई उनके माता-पिता की सराहना कर रहे थे।

नगर द्वार तक राजा विजयसेन पुत्री-दामाद को विदा करने आये। उनके साथ पटरानी भानुमती और समस्त राज-परिवार तथा परिकर एवं प्रधान, अमात्य आदि सभी प्रमुख राज-सेवक थे।

विदा के समय माता ने पुत्री को पति-चरणों में अचल निष्ठा और भक्ति रखने का–पतिव्रत धर्म का उपदेश दिया। राजा ने पुत्री और जामाता को अंक से लगाकर आशीर्वाद दिया।

साश्रुनयन विदा करके राजा विजयसेन अपने परिवार सहित वापिस नगरी को लौटे और विपुल दहेज के साथ कुवलयचन्द्र बड़े भाई कुमार महेन्द्र, पत्नी कुवलयमाता तथा अन्य अनेक सुभट सेवकों को लेकर अयोध्या की ओर चल दिया।

संसार-चक्र :

विजयनगरी से प्रस्थान करके कुमार कुवलयचन्द्र सत्य पर्वत के शिखर के समीप जा पहुँचा। सुरम्य स्थान देखकर पड़ाव डाल दिया। सेवक जल की खोज में इधर-उधर घूमने लगे। कुछ पुरुषों ने आकर कुमार से कहा—

समीप ही सरोवर के किनारे एक साधु विराजमान हैं।

वे जैन श्रमण हैं, तापस त्रिदंडी हैं अथवा कोई अन्य? कुमार कुवलयचन्द्र ने पूछा।

सेवकों ने बताया–

यह तो हम नहीं जानते; किन्तु उनके हाथ में रजोहरण है। वे श्वेतवस्त्रधारी हैं और अपने ही हाथों से उन्होंने केशलोंच किया है। उनके मुख पर अपूर्व शांति का वास है।

कुमार ने सोचा–यह सब लक्षण तो जैन श्रमणों के हैं। उसके हृदय में मुनिदर्शन की उत्कण्ठा जागी। वह उठ खड़ा हुआ और बोला-

कहाँ है मुनि? मैं उनके दर्शन हेतु जाऊंगा।

पति के उठते ही कुवलयमाला भी उठ खड़ी हुई। कुमार महेन्द्र भी प्रस्तुत हुआ। सभी चल दिये। मुनि के समीप पहुँचकर भक्तिपूर्वक वंदना की। मुनि के चरणों में बैठकर कुवलयचन्द्र मन ही मन सोचने लगा– ये साधु नवदीक्षित हैं। इनका रूप कामदेव के समान सुन्दर है। किसी विशेष कारणवश ही इन्होंने वैराग्य लिया होगा। उसकी उत्सुकता जाग्रत हो गई, पूछा–

मुनिवर! इस जंगल में आप कैसे? कहाँ से आये हैं? कामदेव के समान रूप संपदा होते हुए भी वैराग्य का क्या कारण हुआ?

मुनिश्री ने कुवलयचन्द्र की ओर देखा; उपस्थित जनों पर दृष्टि डाली और फिर बोले–

कुमार! मेरे वैराग्य का कारण है, चित्रकला।

चित्रकला! —आश्चर्य हुआ कुमार। उसकी उत्सुकता और भी बढ़ गई।

बड़ा अद्‌भुत कारण है, गुरुदेव! कृपया विस्तार से बताइये।

उत्सुकता है तो सुनो। मुनिश्री कहने लगे–

इस भरतक्षेत्र में लाट देश है। वहाँ द्वारका नाम की समृद्ध नगरी है। नगरी पर सिंह नाम का पराक्रमी राजा राज्य करता है। मैं उसका बड़ा पुत्र भानुकुमार हूँ। माता-पिता के अमित लाड़-प्यार के सहारे मैं युवा हो गया। मुझे चित्रकला का चाव था। एक से बढ़कर एक चित्र बनाता। नए-नए दृश्य देखने के लिए मैं नगरी और उसके बाहर उपवन-उद्यानों में घूमता रहता था कि कोई नयनाभिराम दृश्य दिखाई दे जाय तो उसे अपनी तूलिका से उतारकर अंकित कर लूँ–चित्र बना लूँ।

एक दिन मैं इसी उपक्रम में नगर के बाहर उद्यान में जा निकला। वहाँ कहीं से घूमता-घामता एक उपाध्याय आकर ठहरा हुआ था। उसने मुझसे कहा–

हे कुमार! तुम तो चित्रकला मर्मज्ञ हो।

हाँ, हूँ तो; किन्तु आपको क्या काम है? —मैंने पूछा।

मैंने भी एक चित्र बनाया है। सुन्दर है या नहीं, जानना चाहता हूँ।

दिखाओ, तभी बता सकता हूँ।

उपाध्याय ने चित्र दिखाया। चित्र बड़ा अद्‌भुत था। कुछ देर

तक तो मैं देखता रहा। मेरी समझ में ही न आय कि यह कैसा चित्र है। इसमें क्या अंकित है। मैंने पूछा--

उपाध्याय! इस चित्र में तुमने क्या चित्रित किया है?

कुमार! यह संसार-चक्र है।

संसार-चक्र! क्या संसार का भी चक्र होता है?

हाँ संसार एक चक्र ही तो है। जीव नाभि है, जन्म-मरण ढोरी और कर्मरूपी पवन इसे घुमाता रहता है। मैं समझा नहीं। न तो मैं तुम्हारे कथन का गूढ़ार्थ समझ पाया और न इस चित्र का मर्म। मुझे विस्तार से बताओ।

मेरी जिज्ञासा पर उपाध्याय बताने लगा--

देखो! यह संसार का चित्र है। संसार का आकार तीन शराबों जैसा है। यह निम्न प्रदेश है, जिसे अधोलोक कहते है और इसमें सात नरक हैं। इन नरकों में जीव को असह्य और अकथनीय कष्ट भोगने पड़ते हैं। अत्यधिक पापी, हिंसा करने वाले और अधिक आरम्भ-परिग्रह करने वाले जीव इनमें जन्म लेते हैं और दीर्घकाल तक दुःख भोगते रहते हैं।

यह है मध्यलोक! इसमें तिर्यंच पशु भी हैं और मनुष्य भी। यह अधोलोक से ऊपर है। अधिक पाप तथा कम पुण्य वाले जीव पशु बनते हैं और अधिक पुण्य तथा कम पाप वाले जीव मनुष्य।

मध्यलोक से ऊपर ऊर्ध्वलोक है। यहाँ स्वर्ग हैं। शुभकर्म करने वाले पुण्यात्मा इनमें उत्पन्न होकर दिव्य सुखों का भोग करते हैं।

और सबसे ऊपर है सिद्धलोक--समस्त शुभाशुभ कर्मों को नष्ट करने वाले जीव यहाँ विराजते हैं और अनन्तकाल तक आत्मिक सुख पाते हैं वे फिर कभी जन्म-मरण के संसार-चक्र में नहीं पड़ते।

मैं चित्र को देख रहा था। मध्यलोक की रचना में एक स्थान पर मेरी दृष्टि अटक गई। मैं उसे ध्यान से देखने लगा। किन्तु कुछ समझ में न आया। उपाध्याय की ओर देखने लगा। मेरे मन में विचार आया--अवश्य यह कोई देव है, अन्यथा तीनों लोकों के सुख-दुःखों का चित्रण कैसे कर पाता। साधारण चित्रकार की क्षमता तो इतनी है नहीं कि वह स्वर्गों के सुख और नरकों के दुःखों का आलेखन कर सके। यह मध्यलोक ही इतना विशाल है कि इसका चित्रण भी असंभव है। किन्तु अपने विचारों को मैं मन में ही दबा गया। प्रगट में पूछा—

उपाध्याय जी! मध्यलोक के चित्रण में आपने जो ये कुछ चित्र बनाए हैं, वे घटना-क्रम से लगते हैं। इनका रहस्य बताइये।

उपाध्याय कहने लगा—

यह जो ऊँचे-ऊँचे भवनों का चित्र है, यह है चंपानगरी। इसमें सुरुचिपूर्ण दुकानें और बाजार हैं। इस पर महारथ नाम का पराक्रमी नरेश राज्य करता था। इसी नगर में कुबेर के समान धनी धनदत्त नाम का व्यापारी रहता था। उसकी रूप-गुणवती पत्नी का नाम था–देवी। सैकड़ों उपायों को करने के बाद उसके दो पुत्र हुए। पुत्रों के नाम थे--कुलमित्र और धनमित्र। पुत्रों के जन्म के कुछ समय पश्चात् पिता की मृत्यु हो गई और धन नष्ट हो गया। किसी रिश्तेदार ने साथ न दिया। माता ने मेहनत-मजदूरी करके उन दोनों का पालन-पोषण किया। पुत्र युवा हो गए तो माता ने एक दिन कहा—

पुत्रों! अब तुम युवक हो गए हो; वणिक्-पुत्र हो, धन उपार्जन करो।

माता की इच्छा स्वीकार कर दोनों व्यापार कर्म में प्रवृत्त हुए किन्तु उन्हें लाभ के बदले हानि ही हुई। चार रुपये का माल खरीदते तो दो में बिकता, दो में खरीदते तो एक में बिकता और एक रूपयें का खरीदा हुआ आधे में। इस प्रकार गाँठ की पूँजी भी गँवा बैठे। माता की

मेहनत-मजदूरी की कमाई भी गई। समझ लिया व्यापार से हमें लाभ नहीं होगा।

व्यापार में लाभ न हुआ तो खेती की ओर ध्यान लगाया। ग्रामपति की खुशामद करके खेत लिया, किसी से बैल उधार माँगे और किसी से हल। खेत जोतकर बीज बो दिया। पर दुर्भाग्य की बलिहारी। बरसात ही नहीं हुई। बीज भी सूख गया।

कृषिकर्म भी छोड़ा और कुछ पशु (बैल, गर्दभ, खच्चर आदि) पकड़े। लगे उन पर अन्य व्यापारियों का माल ढोने। सोचा, इसमें लाभ नहीं तो मजदूरी ही मिलेगी। किन्तु दुर्भाग्य ने यहाँ भी पीछा न छोड़ा। पशुओं में बीमारी फैल गई। सभी पशु मर गए।

अब-उन दोनों ने दूसरों के घर सेवाकार्य किया। इस चाकरी में भी उनका दुर्भाग्य साथ रहा। मालिक काम तो कस कर लेता किन्तु खाने को पेटभर भी न देता।

दुःखी होकर दोनों भाई दूसरी नगरी को चले गए। सोचा– वहाँ भाग्य साथ देगा किन्तु वहाँ भी तो दुष्कर्म साथ थे। कुछ काम न मिला तो भिक्षावृत्ति जैसा निंद्य कर्म करने लगे। पर दुर्भाग्य रोड़ा बनकर खड़ा हो गया। लोग देते तो कुछ थे नहीं, भर्त्सना ऊपर से करते थे- खूब हृष्ट-पुष्ट हो काम नहीं किया जाता, चल दिए भिक्षा माँगने; मुफ्तखोरे कहीं के।

वहाँ से भी निराश होकर सागर किनारे आए। किसी व्यापारी का जहाज तैयार खड़ा था, गमन के लिए, वणिक्-पुत्रों ने अनुनय की-

सेठजी! हमें भी अपने साथ ले चलिए।

नहीं भाई! मुझे कोई जरूरत नहीं। सेठ ने उन्हें टालने का प्रयास किया। किन्तु वे दोनों टलते कहाँ? बहुत आग्रह किया तो सेठ ने पूछा–

तुम तो पीछे ही पड़ गए, क्या लोगे आजीविका का? तुम्हें भी साथ ले चलूँगा। जहाँ इतने सेवक हैं, दो और सही।

कुलमित्र धनमित्र को आसा बँधी। बोले—

जो आप उचित समझें, दे दीजिए। हम सभी काम करेंगे।

व्यापारी ने उन्हें साथ चलने की अनुमति दे दी। दोनों मन लगाकर काम करने लगे। जहाज सागर के बीच पहुँचा तो दुर्भाग्य सागर की लहर के रूप में जहाज से आ टकराया। लकड़ी का जहाज टूट गया। बड़ी कठिनाई से एक पाटिए (लकड़ी के तख्ते) के सहारे किसी द्वीप में जा लगे। इस बार तो दुर्भाग्य का झटका इतना प्रबल था कि प्राणों पर ही आ बनी।

द्वीप में किसी मनुष्य से पूछा—

यह कौन सा स्थान है?

उस पुरुष ने बताया—

रोहणद्वीप।

दोनों वणिक्-पुत्रों को प्रसन्नता हुई। उन्होंने सुन रखा था कि रोहणद्वीप में रत्न मिलते हैं। सोचा– अब दिन पलट जाएँगे, यहाँ से रत्न ले चलेंगे।

वे भूमि खोदने लगे—रत्न प्राप्ति की आज्ञा में। बहुत दिन तक खोदते रहे, अनेक स्थानों पर भूमि खोद डाली, किन्तु कुछ न मिला।

इस काम को भी छोड़ा और एक धातुवादी की सेवा करने लगे। सोचा–धातुविद्या सीखकर स्वर्ण ही बना लेंगे। बहुत परिश्रम करने पर भी पूरी विद्या नहीं सीख पाये।

विद्या-प्राप्ति असंभव समझकर वे आगे बढ़े और एक पर्वत पर जाकर पत्थर तोड़ने लगे। सोचा–पर्वत के गर्भ में तो कोई न कोई रत्न

मिलेगा ही। किन्तु कितने ही दिनों के प्रयास के बाद क्षार (धूल) ही हाथ लगी।

मनुष्य जब उचित साधनों से धन प्राप्ति नहीं कर पाता तो अनुचित साधनों की ओर मुड़ता है। कुलमित्र और धनमित्र भी जुआ खेलने लगे। किन्तु वहाँ भी हार हुई। हारा हुआ धन न चुका सकने के कारण अन्य जुआरियों ने उन्हें बाँध लिया। बड़ी मिन्नत और खुशामद के बाद मुक्ति मिली।

वहाँ से चले। कहीं चाकरी (नौकरी) की। किन्तु वहाँ भी विवाद हो गया और उनकी पिटाई हो गई।

जब मनुष्य का अपना पुरुषार्थ काम नहीं देता तो देवी-देवताओं की याद आती है। इन दोनों ने भी यक्षिणी सिद्ध करने का प्रयास किया। अजनयोग का प्रारम्भ किया। सम्पूर्ण शरीर काला रंग लिया- कोयले के चूर्ण से, जब वह चूर्ण आँखों में गया तो जलन होने लगी। किसी प्रकार इस पीड़ा को सहन करते हुए ध्यान जगाया तो यक्षिणी के स्थान पर विकराल मुख वाला भयंकर बांघ दिखाई दिया। दोनों थर-थर काँपने लगे। वह भी आँखों से ओझल हुआ तो विशालकाय राक्षस प्रगट हो गया। दोनों घबड़ा गए। यक्षिणी का ध्यान भूल गए और प्राणों की खैर मनाने लगे।

अब चारों ओर से निराश होकर गिरिगुहा के बाहर जा बैठे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर। कुछ दिनों में ही अन्न-पान के अभाव में सूखकर कांटा हो गए। अब तो पिंजर मात्र ही रह गए थे।

जीवन से निराश होकर प्राणनाश का निश्चय कर लिया। किसी प्रकार गिरि शिखर पर पहुँचे। वहाँ से कूदकर आत्म-हत्या करने ही वाले थे कि दिव्य वाणी सुनाई दी—

दुस्साहस मत करो।

दोनों ही चारों ओर देखने लगे। उन्होंने दीन स्वर में पुकार की-

हमको आत्म-हत्या से रोकने वाले तुम कोई भी हो–मनुष्य अथवा देवता। हमें दर्शन दो।

उन्होंने देखा कि तपस्या से क्षीण काया वाले एक तपस्वी मुनि गज गति से चले आ रहे हैं। उनके मुख पर अपूर्व शांति विराजमान थी। तप तेज से ललाट देदीप्यमान था। मुनिश्री को नमन करके उन दोनों ने कहा—

मुनिवर! आप हमें आत्मपात से रोकिए मत। हम जीवन से निराश हैं। सभी प्रकार के उद्यम करने पर भी हमें भरपेट अन्न नहीं मिलता, ऐसे जीवन से मौत ही अच्छी।

वत्स! आत्महत्या तो घोर दुःख का कारण है। इस निंद्यकर्म को मत करो। इससे तुम्हारी आत्मा को नरक के कष्ट भोगने पड़ेंगे।

यहाँ भी कौन सा सुख भोग रहे हैं? दुःखों के दावानल में ही तो जल रहे हैं।

इन दुःखों से मुक्त होने का प्रयास करो। तुमने उचित व्यापार नहीं किया, सही दिशा में उद्यम नहीं किया अन्यथा यों निराश न होते।

कुलमित्र-धनमित्र ने साधुजी को ध्यानपूर्वक देखा और फिर बोले—

हमने तो अपनी शक्ति भर प्रयास किया। फिर भी हम असफल हुए। अब आप ही सही दिशा बताइये।

(क्रमशः)

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1.	Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:		
	Vol - 1 (satakas 1- 2)	Price : Rs.	150.00
	Vol - 2 (satakas 3- 6)		150.00
	Vol - 3 (satakas 7- 8)		150.00
	Vol - 4 (satakas 9- 11) ISBN : 978-81-922334-0-6		150.00
2.	James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)	Price : Rs.	100.00
3.	P. C. Samsukha - Essence of Jainism ISBN : 978-81-922334-4-4	Price : Rs.	15.00
4.	Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, ISBN : 978-81-922334-7-5	Price : Rs.	50.00
5.	Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani	Price : Rs.	15.00
6.	Ganesh Lalwani - Jainthology ISBN : 978-81-922334-2-0	Price : Rs.	100.00
7.	Lalwani and S. R. Banerjee-Weber's Sacred Literature of the Jains ISBN : 978-81-922334-3-7	Price : Rs.	100.00
8.	Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India ISBN : 978-81-922334-5-1	Price : Rs.	100.00
9.	Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8	Price : Rs.	30.00
10.	Smt. Lata Bothra- The Harmony Within	Price : Rs.	100.00
11.	Smt. Lata Bothra- From Vardhamana-to Mahavira	Price : Rs.	100.00
12.	Smt. Lata Bothra- An Image of-Antiquity	Price : Rs.	100.00

Hindi :

1.	Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3 Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	20.00
3.	Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	30.00
4.	Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	50.00
5.	Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira	Price : Rs.	60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad ISBN: 978-81-922334-8-2	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal ISBN: 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

इसके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य तीन पत्रिकाएँ :

अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 0021 - 4043	(आजीवन)	5000.00
हिन्दी मासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 2277 - 7865	(आजीवन)	5000.00
बंगला मासिक पत्रिका	वार्षिक	200.00
ISSN : 0975 - 8550	(आजीवन)	2000.00

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects, Interiors, Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700 013
Phone : 2227-5240/45, Fax : 22276356
Email Id : info@nahardecor.com

Change yourself and change your world

Shree Jin Chandra Suriji Maharaj
Founder of **SATYA SADHNA**

SITAL GROUP OF COMPANIES

Deals in :-

- ☐ Financial Services.
- ☐ Construction of Commercial & Residential Buildings.

BIKASH SINGH CHHAJER
"Centre Point" 21, Hemanta Basu Sarani
2nd Floor, Room No.-226, Kolkata-700001
Phone: (033) 22429265/22109228
Fax: (91-33) 22429265. Mobile: 9831022577
email: sitalgroupofcompanies@yahoo.co.in